[illegible]

जनसत्ता, 7 सितंबर, 2014: उन्नीसवीं सदी के प्रारंभिक बांग्ला समाचार-पत्रों को अगर देखें तो उनमें साड़ी के साथ साया-शमीज पहनने वाली आधुनिकाओं को अक्सर विद्रूप का पात्र बनाया जाता था। खासकर ब्राह्म समाज की औरतें इन्हें पहनती थीं। कालांतर में उनकी जगह ब्लाउज आया। बंगाल में भद्रलोक परिवार की औरतें बाहर निकलने लगीं, उनके लिए महिला शब्द का प्रयोग किया जाने लगा। पचास-साठ वर्षों तक बहस चली कि उसकी 'यौन नैतिकता' कैसी हो, उसके लिए शिष्टाचार के कौन-से नियम हों, और सबसे बड़ी बात कि उसका पहनावा कैसा हो। आखिरकार साड़ी के साथ अब तक की आलोचना के शिकार साया-ब्लाउज पर सहमति हुई। यह बहस अभी तक अलग-अलग रूपों में जारी है। प्रभु जोशी का लेख 'वस्त्र विचार नहीं व्यापार' (24 अगस्त) उस शृंखला में नई कड़ी है।

यह बात अलग है कि परिधान के बारे में सोचने की कोशिश करने पर इन दिनों मुझे किसी नारी की नहीं, बल्कि एक विशिष्ट पुरुष की याद आती है। लेकिन पुरुष का परिधान कभी सामाजिक विमर्श का विषय नहीं रहा है। हम कई पीढ़ियों से नारी परिधान पर बहस किए जा रहे हैं। यहां भारत में साड़ी को प्रतिष्ठित करने की कोशिश चल रही है, मानो ऐसी कोशिश की कोई जरूरत हो- तो पड़ोसी देश पाकिस्तान में साड़ी पहनने को बेताब युवतियों को दाढ़ी वाले सीख दे रहे हैं कि यह संस्कृति के पतन का द्योतक है।

जोशीजी व्याकुल हैं कि ''इधर किसी ने स्त्री के बदलते 'वस्त्र विन्यास' पर अपने विचार प्रकट किए नहीं कि उधर लगे हाथ, भभोड़ती भर्त्सनाएं उसको चौतरफा घेर कर चींथने लगती हैं।'' जोशीजी की ऐसी दयनीय हालत से पूरी सहानुभूति व्यक्त करने की कोशिश करते हुए कहना चाहूंगा कि भारतीय परिधान केवल साड़ी नहीं, मर्दों का धोती-कुर्ता भी है। जिस तरह अनेक पुरुष धोती-कुर्ता या पायजामा-कुर्ता पहनते हैं, उसी तरह अनेक औरतें भी चाव से साड़ी पहनती हैं। और औरतों द्वारा पश्चिमी परिधान के चयन का कारण पुरुषों द्वारा पैंट-शर्ट पहनने के कारण से क्योंकर अलग होगा, यह मेरी समझ से बाहर है। शायद परिधान का संबंध समाज में गतिशीलता के चलते सुविधा-असुविधा के साथ जुड़ा हो? शायद सार्वजनिक जीवन में औरतों की भागीदारी बढ़ी हो? शायद इसके चलते वे अपनी सुविधा के अनुसार वस्त्र चयन की जुर्रत कर रही हों?

कारण कुछ भी हो, यह बवाल खड़ा करने की इजाजत कतई नहीं दी जा सकती कि ''स्त्री के पहनावे को श्रेष्ठ-अश्रेष्ठ बताने वाले ये कौन होते हैं?'' बेशक, स्त्री के पहनावे पर फैसला देना हम पुरुषों का हक है, हम सैकड़ों सालों से यह फैसला देते आए हैं। स्त्री के पहनावे को तय करने की कोशिश आधुनिक पुरुष की बीमारी है। इसी के चलते ईरान के शाह रेजा पहलवी ने 1920 के दशक में फरमान जारी करते हुए औरतों के परदे उतार दिए और खुमैनी ने उन्हें फिर से पहना दिया। कौन-सा पहनावा संस्कृति के अनुरूप है, इस पर अलग-अलग समय में अलग-अलग देशों में अलग-अलग नियम तय किए गए। बस उनमें एक समानता थी। ये नियम पुरुषों ने तय किए।

जोशीजी की राय अगर सिर्फ बौद्धिक विमर्श के तहत पेश की गई होती, तो शायद इन पंक्तियों की कोई जरूरत न रहती। एक मिशन के तहत यह राय व्यक्त की जा रही है, जिसमें सिर्फ बुद्धिजीवी शामिल नहीं हैं, बल्कि सड़क पर युवतियों पर छींटाकशी करने वाले, उन्हें खदेड़ने और पीटने वाले कुछ संगठनों के जवान उसे अमली जामा पहना रहे हैं। सिर्फ इतना नहीं, ऐसी राय के पीछे अक्सर यह जताने की कोशिश छिपी रहती है कि औरतों के साथ छेड़खानी, बलात्कार के लिए वे खुद दोषी हैं, क्योंकि अपने परिधान के जरिए ऐसी आफत को वही बुलावा देती हैं। यह बात अलग है कि अभी तक किसी भी मामले में ऐसे निराधार आरोप की पुष्टि नहीं हो पाई है।

मार्के की बात है कि यह सारी बहस आबादी के □ कछोटे-से हिस्से की युवतियों के बारे में चल रही है□ और वहां किस वस्त्र से किस अंग को ढंका जा रहा है या नहीं ढंका जा रहा है, इसके बारे में जोशीजी की वर्णनात्मक प्रतिभा की निश्चय ही दाद देनी प□गी□ अपनी सुविधानुसार वे यह कहना भूल ग□ कि सा□ी पहनने से शरीर का कितना हिस्सा खुला रहता है और किस तरह पिछले दशकों में उस खुले हिस्से का परिमाण ब□ता गया है□ उसके विपरीत आधुनिक वस्त्रों में शरीर अक्सर ज्यादा ढका रहता है□ वैसे मेरी दिलचस्पी यह जानने में भी है कि क्या 'यौनिकनिजता' केवल स्त्री की होती है? कोई पुरुष कैसे उस यौनिकनिजता का विशेषज्ञ बन जाता है?

स्त्री को उपभोक्ता सामग्री के रूप में देखना समाज की □ कघातक बीमारी है□ सवाल है कि समाज के जिस हिस्से की औरतों में पश्चिमी परिधान अभी तक लोकप्रिय नहीं हुआ है, क्या वह हिस्सा इस बीमारी से बचा हुआ है? क्या इसके पीछे □ कमर्दवादी दृष्टि नहीं छिपी है? क्या यह सिर्फ संयोग है कि जोशीजी के संपूर्ण लेख में कहीं भी उस मर्दवादी दृष्टि की आलोचना नहीं की गई है?

कुल मिला कर मैं इस विचार से छुटकारा पाने के काबिल नहीं हूं: औरतें हमारी संपत्ति हैं- घर की चारदीवारी के अंदर और बाहर सार्वजनिक परिसर में भी□ वे क्या पहनेंगी, कैसी जीवन-शैली अपना□ंगी या नहीं अपना□ंगी, यानी खुद के हमारे लि□ कैसे पेश करेंगी, यह हम तय करेंगे□ वैसे, क्या कबीर या तुलसी ने कभी औरतों के परिधान के बारे में कुछ कहा था? या हमारे दौर की औरतें ही ऐसी स्वाधिकारप्रमत्त हो गई हैं?

फेसबुक पेज को लाइक करने के लि□ क्लिक करें- https://www.facebook.com/Jansatta

ट्विटर पेज पर फॉलो करने के लि□ क्लिक करें- https://twitter.com/Jansatta